मूल्यांकन

(परिवर्तन के पुरोधाओं के लिए दिशा-निर्देश)

हो. वै. शेषाद्रि

सुरुचि प्रकाशन
नयी दिल्ली—११००५५

मूल्यांकन

(परिवर्तन के पुरोधा — कार्यकर्ताओं के लिए दिशा-निर्देश)

हो. वे. शेषाद्रि

सुरुचि प्रकाशन
केशवकुञ्ज, नयी दिल्ली—११००५५

प्रकाशकीय

कार्य करने और उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए 'लगन' तो परमावश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं। उसके साथ-साथ कार्यकर्ता को अपनी सिद्धता भी करनी चाहिए तथा समय-समय पर अपना और कार्य का मूल्यांकन भी करते रहना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यांकन का क्या तात्पर्य है और उसके विविध पहलू क्या हैं ? इस विषय पर गत वर्ष (युगाब्द ५०६८) के संघ शिक्षा वर्गों में मा० शेषाद्रि जी के बौद्धिक हुए थे। उन्हीं को इस पुस्तिका में प्रस्तुत किया गया है।

आशा है समाज परिवर्तन के कार्य में प्रवृत्त पुरोधाओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी और मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

प्रकाशक

नयी दिल्ली,
वर्ष प्रतिपदा युगाब्द ५०६६

मूल्यांकन

(परिवर्तन के पुरोधाओं के लिए दिशा-दर्शन)

—हो. वे. शेषाद्रि

संघ के उत्तम कार्यकर्ता बनने की हम सभी की इच्छा होना स्वाभाविक है। परन्तु अपनी इच्छा पूर्ण हो, इसके लिए हमें काफी सिद्धता करनी होगी। इस सिद्धता का स्वरूप क्या है ?

हम एक लक्ष्य की सिद्धि के लिए निकले हैं, यह लक्ष्य हमारी आँखों के सामने से कभी ओझल न होने पाए। इसके लिए हमें बार-बार संघ के लक्ष्य का स्मरण करते रहना चाहिए। अपने लक्ष्य को 'हिन्दू राष्ट्र का परम वैभव' या 'हमारे राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति', जैसी सैद्धांतिक बातों तक ही सीमित न करते हुए हमें अपने आप से यह प्रश्न करना चाहिए कि क्या हमारे गाँव/बस्ती में संघ का कार्य इस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है ? संघ-कार्यकर्ता के नाते हमारी अपनी कार्य-निर्वहन की पद्धति, हमारी दृष्टि, हमारे कार्य की गति – ये सब इस दृष्टि से समीचीन हैं क्या ? जिस उपशाखा में हम प्रतिदिन उपस्थित होते है उसमें भी उसी दिशा की ओर अपेक्षित मात्रा में प्रगति दिखाई दे रही है क्या ? परिश्रम के फलस्वरुप अपनी शाखा के समुचित गति से बढ़ने और फलप्रद होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं क्या ? कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने विविध प्रकार के कार्यक्रमों के बीच हमारा लक्ष्य ही ओझल हो गया हो ! ऐसे प्रश्नों द्वारा हमें स्वयं की और अपनी शाखा की प्रगति का बार-बार विश्लेषण करना होगा। इस प्रकार का आत्मविश्लेषण ही कार्य के मूल्यांकन की प्रमुख प्रक्रिया है। जिस तरह परीक्षा में प्राप्त अंकों से विद्यार्थी अपनी श्रेणी निश्चित करता है, उसी प्रकार हमें भी अपनी शाखा की और खुद अपनी भी प्रगति का मूल्यांकन कर समझ लेना चाहिए कि कहाँ हम सफल हुए हैं ? और हमारी असफलता कहाँ है ? उसके लिए हमें क्या-क्या सावधानी लेनी है ? संक्षेप में, मेरा अपना कार्यक्षेत्र, मेरी अपनी शाखा और मेरी स्वयं की प्रगति को ध्यान में रखते हुए उस दिशा और गति में प्राप्त सफलता का मूल्यांकन करना शाखा-मूल्यांकन की परिकल्पना में समाहित है। इस प्रक्रिया में प्रश्न पूछना और उत्तर देना दोनों कार्य हमें

ही करने हैं। विद्यालयों की परीक्षाओं में कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि पूछे गये प्रश्न पाठ्यक्रम के बाहर के हों। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ कोई भी प्रश्न हमसे अपेक्षित जानकारी के बाहर का नहीं है। इसलिए हर उत्तर के सही या गलत होने का निर्णय हम ही कर सकते हैं। अपनी साधना का मूल्यांकन हम खुद कर सकते हैं।

लक्ष्य पर एकाग्रता

यह हम सबकी मानी हुई बात है कि संघ-कार्य करने की हम सबकी अपनी प्रबल आकांक्षा ही हम सबको कर्म-पथ की ओर सतत् बढ़ाते रहने का प्रेरणास्रोत है। कार्य के प्रति दृढ़-संकल्प ही उत्तम कार्यकर्ता का मुख्य लक्षण है। अपने लक्ष्य की स्पष्ट परिकल्पना का निर्धारण और उसकी प्राप्ति का योग्य मार्ग निर्धारित कर उस पथ पर सतत् बढ़ते हुए, सीढ़ी-दर-सीढ़ी अपनी प्रगति का सिंहावलोकन कर, आगे बढ़नेवाला ही सफलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

एक बार एक यात्री किसी गाँव की ओर निकल पड़ा थोड़ी देर के बाद एक चौराहा मिला, जहाँ पर कोई संकेत नहीं था। उसने वहाँ के एक दुकानदार से उस गाँव का रास्ता पूछा। दो बार पूछने पर भी वह आदमी चुप रहा, कोई उत्तर नहीं दिया। वह पथिक स्वयं एक रास्ते को अनुमान से चुनकर कदम बढ़ाने लगा। तब उस आदमी ने उसे बुलाकर सही रास्ता दिखाया। यात्री ने पूछा कि 'मेरे दो-दो बार पूछने पर भी आपने जवाब क्यों नहीं दिया ?' तब उस आदमी ने कहा कि 'मैं जानना चाहता था कि तुम सचमुच जाना चाहते हो या नहीं ? लेकिन जब तुम्हारे जाने का पक्का निश्चय देखा तो रास्ता बताया।' अपने मन में आगे बढ़ने का संकल्प तथा तदनुरूप परिश्रम उठाने की यदि सिद्धता रही तो सहायता भी अवश्य मिलती रहेगी। परन्तु यह भी उतना ही महत्त्व का है कि बार-बार हम परखते रहें कि अपना रास्ता ठीक है या नहीं।

नागपुर से दिल्ली जाते समय रास्ते में इटारसी, भोपाल, आगरा आदि मिलें यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर वर्धा, चंद्रपुर, विजयवाड़ा आदि मिलें तो यह कैसे संभव है कि वह दिल्ली पहुँचे ? अपने परिश्रम का यथार्थ मूल्यांकन करते हुए लक्ष्य की दिशा में ही कदम बढ़ाना होगा। इसलिए साधक को हमेशा अपनी दृष्टि लक्ष्य पर स्थिर रखकर कर्म-पथ पर अग्रसर होना चाहिए।

प्रत्येक उपशाखा समग्र हिन्दू संगठन का प्रतीक हो

तब प्रश्न आता है कि संघ का लक्ष्य क्या है ? अपने राष्ट्र को परम वैभव की स्थिति प्राप्त कराने के लिए अपने हिन्दू समाज को संगठित करना, यही लक्ष्य है। लेकिन केवल हिन्दुओं का संगठन कहने मात्र से संघ में अभिप्रेत उसका यथार्थ बोध नहीं होता है। हिन्दू समाज के एक वर्ग विशेष को संगठित करने वाले भी कहते हैं कि हमारा भी हिन्दू संगठन है। परन्तु हमारा लक्ष्य तो हिन्दू समाज के किसी एक समुदाय या वर्ग का संगठन नहीं अपितु संपूर्ण हिन्दू समाज का ही संगठन है। जिससे कोई वर्ग चाहे आर्थिक हो या भाषाई, कोई समुदाय, जाति या पंथ छूट न पाए। संघ सभी हिन्दुओं की समान श्रद्धा का केन्द्र बने यह हमारी हार्दिक इच्छा है। 'एक विराट पुरुष के रूप में खड़ा संगठित संपूर्ण हिन्दू समाज' यही हमारे हिन्दू संगठन की परिकल्पना है। संघ का यह लक्ष्य हर शाखा के द्वारा साकार होना चाहिए। संघ की शाखा ही अपने लक्ष्य की पूर्ति का माध्यम है। हमें यह अनुभव होना चाहिए हमारी प्रत्येक शाखा हमें लक्ष्य की ओर ले जा रही है। शाखा में आने वाले प्रत्येक स्वयंसेवक को अपने लक्ष्य की प्रखर अनुभूति होनी चाहिए। शाखा में तैयार होने वाला प्रत्येक स्वंयसेवक/कार्यकर्ता संघ के ध्येय का मूर्तिमान का रूप हो-यही इच्छा है। यही स्वयं के मूल्यांकन की कसौटी है।

किसी भी जीवमान संगठन का प्रमुख लक्षण यही होता है कि उसकी छोटी से छोटी इकाई के सबसे आखिरी सदस्य में भी उस संगठन का भाव जागृत रहे। वास्तव में किसी भी जीवमान अस्तित्व का यही लक्षण है। उदाहरण के लिए इमली के पेड़ या किसी भी पेड़ का उदाहरण देखें। उसकी सैकड़ों शाखा-प्रशाखाओं एवं नन्हें-नन्हें लाखों पत्ते गरमी के मौसम की कड़ी धूप को भी सहन करते हुए हरियाली में झूमते रहते हैं। मानो एक छोटा सा पत्ता भी सूर्य भगवान को हराकर लहलहाता खड़ा हो जाता है। उसकी इस नित्य चेतना का रहस्य क्या है ? जड़ों द्वारा मिट्टी की गहराई में से अवशोषित प्राणरस तने व सैकड़ों टहनियों के माध्यम से चोटी पर लगे कोमल पत्तों तक पहुँच जाता है। अगर एक वृक्ष प्रचण्ड आँधी को झेलता है, उखड़ता नहीं; कड़ी गर्मी में भी सूखता नहीं, दृढ़ता से जीवित खड़ा रहता है तो इसका रहस्य इसी में है कि जड़ों से निकाला हुआ प्राणरस समूचे पेड़ में प्रबल रूप से संचारित होता रहता है।

जमीन की गहराई से लेकर चोटी के छोटे पल्लव तक संपूर्ण वृक्ष की एकात्मता ही उसकी प्राणशक्ति का रहस्य है।

हर एक स्वयंसेवक उसी भावना से अनुप्राणित हो

संघ की 'शाखा' भी वृक्ष की शाखा जैसी है। देश का एक-एक गाँव, वहाँ की एक-एक उपशाखा ही संघवृक्ष की शाखोपशाखाएँ हैं। ऐसी उपशाखाओं में आनेवाला एक-एक शिशु स्वयंसेवक ही इसका पल्लव है। समग्र हिन्दू समाज को संगठित करने की अदम्य आकांक्षा ही संघवृक्ष का प्राणरस है। यह प्राणरस एक-एक स्वयंसेवक तक पहुँचे और उसके व्यवहार में वह परिलक्षित हो, यही शाखा की सजीवता का लक्षण है।

संघ से अभिप्रेत जीवंत संगठन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है मानव-शरीर। कहा जाता है कि उसमें पाँच सौ करोड़ जीव-कोशिकाएँ हैं। मस्तिष्क की जीवकोशिकाएँ ही शरीर के बारे में सोचती हैं ऐसी बात नहीं है। हमारे शरीर की पाँच सौ करोड़ जीवकोशिकाएँ भी एक ही समय एक ही प्रकार से शरीर के बारे में सोचती हैं। किस समय, किस प्रकार चलना है, यह शरीर की एक-एक जीव कोशिका को भी ठीक-ठीक मालूम है। खास मौके पर शरीर की एक-एक जीवकोशिका में उमड़ने वाला प्रतिस्पंदन सब में समान होता है। सुख-दुख, भूख-प्यास, भय, क्रोध आदि के समय शरीर की समस्त जीविकोशिकाओं की भी समान रूप में प्रतिक्रिया प्रकट होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि हर जीवकोशिका में एक ही प्राण का संचार है।

सफल शाखा की कसौटी 'समाज व्यापी और सर्वस्पर्शी रूप'

इसी तरह संघकार्य में भी एक ही चेतना व्याप्त है। अपने शीर्षस्थ कार्यकर्ताओं से लेकर प्रत्येक शाखा-उपशाखा के आखिरी स्वयंसेवक तक वह प्रवाहित होनी चाहिए। जिस प्रकार वृक्ष के गुण उसके पत्तों, फूलों, फलों आदि में प्रकट होते हैं, उसी तरह संपूर्ण हिन्दू समाज के संगठन का ध्येय संघ की एक-एक उपशाखा के एक-एक गट, गट के एक-एक स्वयंसेवक के चिंतन, कार्यशैली, जीवन की रचना आदि सब पहलुओं में प्रकट होना चाहिए। तभी हम कह सकते हैं कि हम वास्तव में अपने ध्येय की ओर बढ़ रहे हैं। अपनी शाखा सजीव शाखा है या नहीं यह जानने के लिए इस कसौटी पर कसना होगा। समस्त हिन्दू समाज को संगठित

करने की दृष्टि और उसके लिए पोषक गुण हमारी शाखा के प्रत्येक स्वयंसेवक में पनप रहे हैं क्या ? हमारी शाखा सचमुच समग्र हिन्दू समाज की एकता का प्रतिबिम्ब बनी हुई है क्या ? हमारे क्षेत्र के हिन्दू समाज की सभी जातियों, मतों, पंथों और वर्गों से स्वयंसेवक शाखा में आ रहे हैं ? ऐसा तो नहीं है कि किसी एक ही जाति, एक ही वर्ग, एक ही भाषा, एक ही संप्रदाय के लोगों का प्रतिनिधित्व हमारी शाखा में हो रहा हो। ऐसा न होकर अपने-अपने गाँव या बस्ती या नगर में रहनेवाले हिन्दू समाज के सभी वर्गों की अपनी शाखा में भागीदारी होती है– तभी हम कह सकते हैं कि अपनी शाखा सचमुच समाजव्यापी है। इसी प्रकार, अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्र के किसी एक विशिष्ट भाग में ही कार्य बढ़ गया है, अन्य भागों में बहुत ही कम हैं– ऐसा भी नहीं होना चाहिए। भौगोलिक दृष्टि से भी अपना कार्य सर्वस्पर्शी होना अत्यावश्यक है।

कार्य का मूल्यांकन करते समय हमें सर्वप्रथम इसी बात का ध्यान रखना है कि क्या अपनी शाखा 'समाजव्यापी और सर्वस्पर्शी' है ? परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि अपने गाँव या कार्यक्षेत्र का प्रत्येक हिन्दू पुरुष शाखा में आए। वह संभव भी नहीं। यह भी नहीं कि आने वालों के माथे पर लिखा हो कि वह अमुक जाति, वर्ग या पंथ के हैं। परन्तु सभी प्रकार के हिन्दू लोगों की अपने हिन्दू संगठन के कार्य में भागीदारी स्वाभाविक रूप से हो इतना ही अभिप्रेत है। कोई शाखा उत्तम है, इसकी कसौटी केवल यह नहीं कि वहाँ अच्छी संख्या में स्वयंसेवक उपस्थित रहते हैं। केवल संख्या के आधार पर शाखा की गुणवत्ता को नापना ठीक नहीं है। वह हमारे लक्ष्य की यथार्थता नहीं दर्शाता है। शाखा में सर्वस्पर्शी व सर्वव्यापी प्रतिनिधित्व है या नहीं –यही उसकी सार्थकता की सच्ची कसौटी है।

समग्र हिन्दू संगठन के लिए साधन है, शाखा

हमारी अनेक शाखाओं में इस दृष्टि से अभाव देखने में आता है। इस प्रकार के अभावों को दूर करना होगा। अगर किसी बड़े गाँव में प्रभात शाखा में केवल व्यापारी, कर्मचारी, व्यवसायी ही आते हैं तो वहाँ पर विद्यार्थियों के लिए एक सायंशाखा अथवा प्रभात शाखा खोलना आवश्यक है। इसी तरह मजदूर, श्रमिक, किसानों के लिए रात्रि शाखा चलाना

अनिवार्य बन जाता है। उस स्थान पर पहले से स्थापित शाखा चाहे जितनी भी उत्तम हो तो भी उसी से सांत्वना पाकर कृत-कृत्यता के शिकार नहीं होना चाहिए। अलग-अलग आयु के, अलग-अलग समुदायों के लिए अनुकूल समय पर चलनेवाली शाखाएँ न हों तो अपना कार्य संपूर्ण हिन्दू समाज के संगठन के लिए योग्य नहीं कहलाएगा।

गत कई दशकों से चलनेवाली हमारी अनेक पुरानी शाखाएँ भी अभी तक इस प्रकार समाज-व्यापी/सर्वस्पर्शी स्थिति तक नहीं पहुँची हैं। वहाँ के कार्यकर्ता कहते हैं कि हमारे गाँव में जाति-भेद है, आपस में झगड़े हैं, सभी वर्गों के लोग एक साथ मिलकर नहीं आते, वगैरह-वगैरह। वास्तव में अपनी आँखों के सामने संघ के समाज-संगठन का यथार्थ चित्र स्पष्ट न रहने और इस दिशा में प्रयास न करने का ही यह परिणाम है। यदि अपने कार्य को सर्वांगपूर्ण बनाना है तो छुटपुट क्रियाशीलता से ही अपने को तृप्त नहीं होना चाहिए। लक्ष्यपूर्ति के लिए आवश्यक सभी कदम उठाने चाहिए क्योंकि 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'। अगर कार्यकर्ताओं में संगठन की दृष्टि समग्र हो और दृढ़ संकल्प हो कि हम अपनी शाखा को सर्वस्पर्शी तथा सर्वव्यापी बनाकर ही रहेंगे तो धीरे-धीरे उसको कार्यरूप प्राप्त होगा। यह बात सदैव ध्यान में रखें कि शाखा चलाना ही अपना लक्ष्य नहीं है। शाखा अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधन-मात्र है। लक्ष्य है समग्र हिन्दू समाज का संगठन याने सुसंगठित हिन्दू समाज का निर्माण। प.पू. डॉक्टरजी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही तो शाखा शुरू की। किसी शाखा में धीरे-धीरे ही क्यों न हो यदि इस दिशा में कार्य नहीं बढ़ रहा तो वह शाखा उद्देश्य-विहीन शाखा बन जायेगी। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि हिन्दू समाज को समग्र-रूप से संगठित करने के लिए 'शाखा' पद्धति अत्यन्त यशस्वी सिद्ध हुई है इसलिए तो इस पर हम लोग इतना आग्रह करते हैं।

शाखा, उद्देश्यविहीन न हो

स्पष्ट रूप से कार्य-दृष्टि न रहने पर समाज की तरह-तरह की समस्याओं को हल करने में शाखा के स्वयंसेवक किस प्रकार असमर्थ हो जाते हैं – यह बात भी बार-बार ध्यान में आती है। किसी एक प्रांत की एक ग्रामीण शाखा के कार्यवाह ने कहा कि वहाँ की शाखा नियमित रूप

से पचास वर्षों से चल रही है। वहाँ की सेवा बस्ती के बंधु पिछले ७-८ वर्षों से शुरू हुए किसी दलित आंदोलन के शिकार हो गये और पुराने समय से जिस मारुति मंदिर पर वे श्रद्धा रखते थे, दूर से ही खड़े होकर आरती प्रसाद आदि स्वीकार करते थे, अब उस मंदिर पर ही उन्होंने गोबर फेंक दिया। प्रतिक्रिया के रूप में गाँव के अन्य लोगों ने उन पर हमला बोल दिया। परिणाम-स्वरूप पूरा गाँव दो भागों में बँट कर आपसी तनाव से ग्रस्त है। उस कार्यवाह ने यह भी कहा कि "अपने स्वयंसेवक भी समन्वय की भूमिका निभा नहीं सके, क्योंकि उस सेवाबस्ती में संघ का काम बिल्कुल नहीं है और सारे स्वयंसेवक अन्य जातियों के होने के कारण उन पर बस्ती वालों का विश्वास नहीं है।" प्रश्न आता है, ऐसा क्यों हुआ ? समस्त हिन्दू समाज को समता और ममंता के आधार पर जोड़ने के उद्देश्य से प्रारम्भ हुए तथा ५० वर्ष पुराने अपने कार्य से भी अधिक प्रभावी समाज को तोड़ने के लिए निकला केवल ७-८ वर्ष पुराना आन्दोलन कैसे हो सका ?

एक जिला केन्द्र में शाखा काफी प्रभावी है – गत ४० वर्षों से वहाँ पर शाखा चल रही है। भाजपा के एक कार्यकर्ता भी लगातार तीन बार विधान सभा के लिए जीत कर आये हैं। शहर के जीवन में अच्छे प्रतिष्ठित स्थानों पर स्वयंसेवक बैठे हैं। फिर भी वहाँ के कार्यकर्ताओं से चर्चा करने पर पता चला कि ३-४ वर्ष पूर्व वहाँ की सेवा बस्ती में कोई २५ हिन्दू परिवार ईसाई बन गये। यह कैसे संभव हुआ ? ऐसा पूछने पर उत्तर मिला कि "वहाँ के लोगों से हमारा सम्पर्क नहीं था। मतांतरण की घटना का हमें बाद में पता चला। हम लोग वहाँ जाकर फिर से उनको वापिस हिन्दू बनने के लिये कहे थे परन्तु उन्होंने नहीं माना। आज भी वे ईसाई बनकर रह रहे हैं" याने ४० साल तक काम चलाने पर भी अपने समाज के एक भाग में क्या हो रहा है – इसका पता तक नहीं रहता यह कैसी विडम्बना है !

उत्तम समझी जाने वाली हमारी और भी कई शाखाओं के इर्द-गिर्द अबाधित रूप में मतांतरण की गतिविधियाँ चल रही हैं। पिछले दिनों, जब संघ की ओर से जनजागरण का एक अभियान चल रहा था तब बेंगळूरु के पास के एक गाँव में हमारे कार्यकर्ताओं को प्रवेश तक नहीं मिला। कारण इतना ही था कि वह गाँव ईसाईयों से ही भरा हुआ था।

मुखिया, पादरी की अनुमति के बिना उस गाँव में किसी को अंदर कदम तक नहीं रखने देते थे। वहाँ पर कोई पत्रिका भी नहीं आती थी। पादरी ही पत्रिका के समाचारों को छाँटकर अन्य लोगों को बताता था।

'पूरा देश मेरा घर है' – यह भावना जागृत रहे

संपूर्ण हिन्दू समाज की एकता पर हमारे जीवन की श्रद्धा होनी चाहिए। तब जाकर समाज पर होनेवाले आघातों से हमारे मन की भावनाएँ स्पंदित होती हैं। घर के किसी भी कोने में आग लगने पर घर के सभी लोग तुरंत मिलकर उसे बुझाने आगे क्यों बढ़ते है ? 'घर मेरा है'– इस प्रकार की आत्मीयता की भावना परिवार के एक-एक सदस्य में बद्धमूल होना ही इसका कारण है। इसी तरह हमें भी लगे कि देश मेरा घर है, और समाज मेरा परिवार है। इस देश-रूपी विशाल घर में कहीं पर भी आग लगे तो हमें तुरन्त उसकी जानकारी होनी चाहिए। हमें मालूम ही नहीं हुआ, हम आग बुझाने के लिए आगे बढ़े ही नहीं, ऐसी स्थिति उत्तम शाखा की कल्पना का विपर्यास है।

आजकल कुछ प्रांतों में खुले तौर पर जाति के नाम पर राजनैतिक पार्टियों का जहरीला प्रचार चलता है। बिहार में तो जाति और भू-मालिकत्व इन दोनों विवादों को लेकर जातिगत सेनाएँ भी बनायी गयी हैं। बिहार व उ. प्र. में आपसी वैर के कारण हत्याकांड भी होते ही रहते हैं। परन्तु यह भी अनुभव में आ रहा है कि जहाँ-जहाँ पर समाज के सभी वर्गों में अपने स्वयंसेवक है, आपसी प्रभावी संबंध बना हुआ है, वहाँ पर संघर्ष का वातावरण सर्वथा नहीं है। परन्तु व्यापक तौर पर इस प्रकार की अपनी स्थिति नहीं बन पाई है – यह भी चिंता का विषय है। हिन्दू समाज के संगठन की परिकल्पना में सर्वांगीण सामाजिक परिवर्तन ही अभिप्रेत है, इस प्रकार का परिवर्तन लाने के लिए अनुकूल अपनी शाखाओं का विस्तार, कार्यक्रमों की रचना, कार्यकर्ताओं की मानसिक सिद्धता आदि होनी चाहिये। इन सभी दिशाओं में हम सभी का विशेष ध्यान, प्रयास केन्द्रित होना अत्यावश्यक है।

हिन्दू जागरण की दिशा–सामाजिक परिवर्तन हो

सामाजिक एकता का बोध स्वयंसेवकों में जगाने की भूमिका भी अपनी शाखाओं को निभानी चाहिये। हिन्दुत्व के व्यापक सामाजिक भाव

का आज जो विस्मरण हुआ है – इसी कारण से सामाजिक एकता और समरसता का भाव भी लोगों के मन से लुप्त हुआ है। यही हमारे सामाज़िक पतन का भी मूल कारण हुआ। अतः हिन्दुत्व के सही सामाजिक भाव को जगाना होगा। शाखाओं में दिये जाने वाले संस्कारों में हिन्दुत्व पर जोर देने के पीछे यही कारण है। 'हिन्दू' शब्द में ही चमत्कारिक शक्ति है – यह ध्यान में रखें।

कर्नाटक की एक सेवा बस्ती में हम गये थे। एक छोटी गली में ४०-५० बंधुओं से वार्तालाप के बीच में उनको पूछा कि यहाँ बसने वाले सब कौन हैं ? उन्होंने जवाब दिया कि हम 'आदि कर्नाटकी' हैं। फिर पूछा कि शहर के दूसरे मुहल्लों में कौन-कौन रहते हैं ? ब्राह्मण, लिंगायत, गौड़ा, मराठा, कुरुबा आदि कई नाम बताये। फिर प्रश्न किया कि इन सबको मिलाकर कोई एक ही नाम है क्या ? प्रश्न सुनकर वे अवाक् रह गये। सब लोगों ने उत्तर दिया प्रश्न समझ में नहीं आया। तब उन्हें विस्तार से समझाते हुए कहा कि जैसे किसी व्यक्ति के हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक आदि होने पर भी सबको मिलाकर उस व्यक्ति का एक नाम बनता है उसी प्रकार इस सब जातियों का सामूहिक एक नाम क्या है ? तब उन्होंने कहा कि प्रश्न तो समझ में आ गया, पर उत्तर नहीं मालूम। लेकिन एक बालक ने कहा – 'हिन्दू'। मैंने उनको शरीर का उदाहरण देते हुए कहा कि यद्यपि शरीर के एक-एक अंग के आकार, नाम व कार्य भिन्न-भिन्न है तथापि उन सबको मिलाकर एक ही जीवमान शरीर होता है। शरीर के अंगों में ऊँच-नीच का भेद नहीं है। इसी तरह हम सब एक ही हिन्दू समाज के अंग हैं, समान हैं, हममें कोई अछूत नहीं है।' यह सुनते ही एक युवक ने खड़े होकर कहा कि "यहाँ उपस्थित हम सब हरिजन सेवक संघ के सदस्य हैं। अब तक यहाँ आने वाले सभी नेता 'मेरे हरिजन भाईयों' ऐसे ही संबोधित करते आये हैं। पहली बार 'हम सभी हिन्दू हैं'– अपने में कोई भेद नहीं हैं, यह बात सुनी।" एक वृद्ध तो आँखों में आँसू भरकर गद्‌गद् स्वर में कहने लगे कि "मेरे इतने लंबे आयुष्य में पहली बार यह बात सुनी कि हम सभी हिन्दू हैं – हम सभी समान हैं – हममें कोई ऊँचा-नीचा नहीं। मैं पहली बार आत्मगौरव का अनुभव कर रहा हूँ। इसके पश्चात् किसी सरकारी कार्यालय में जाने पर बाहर खड़ा न होते हुए अन्य लोगों की तरह मैं भी अंदर जाऊँगा।"

'शाखा' हिन्दुत्व के भावात्मक-स्वरूप का चेतना स्रोत बने

आजकल तो देश मे सब दूर हिन्दुत्व का स्वाभिमान तेजी से बढ़ने लगा है। 'गर्व से कहो हम सब हिन्दू हैं' यह घोषणा सर्वत्र गूँज रही है। यह स्पष्ट है कि इस परिवर्तन को लाने में संघ-शाखाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। देशभर में व्याप्त हमारी शाखाओं के संपर्क में आने वालों की संख्या तो कुछ लाख तक ही सीमित होगी। लेकिन हिन्दू स्वाभिमान की लहर उन सुदूर गाँवों के कोटि-कोटि बांधवों तक जा पहुँची है जिन्होंने संघ का नाम तक नहीं सुना है। इसीलिए हमारी एक-एक शाखा को अपने-अपने कार्यक्षेत्र में हिन्दुत्व के जागरण, याने उसके सही रचनात्मक स्वरूप के विकास का केन्द्र बनना होगा। शाखाओं का स्वरूप ऐसा हो कि वहाँ का सारा हिन्दू समाज जाति, भाषा, वर्ग, पंथ आदि के भेदों को भूलकर एक विराट समाज-पुरुष जैसा खड़ा हो। प्रत्येक शाखा सुसंगठित हिन्दू समाज के एक लघु-रूप जैसी दिखाई दे। वहाँ पर सब हिन्दुओं को भाई-भाई की तरह समान आदर से व्यवहार करने की जीवनदृष्टि और संस्कार मिलें। क्या हमारी शाखा इस दिशा में सफल हुई है ? यह अपने कार्य के मूल्यांकन का एक प्रमुख मापदंड मानना चाहिए।

इसलिए प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में कार्य विस्तार की दृष्टि से योजना बनाते समय यह बात अवश्यमेव ध्यान में रखनी चाहिए कि गत वर्ष तक अपना कार्य 'समाज व्यापी और सर्वस्पर्शी' बनने की दिशा में कहाँ-कहाँ पर अपूर्ण रहा है ? और इस कमी को भरने के लिए आगामी वर्ष में किस प्रकार की योजना बनानी होगी ? केवल शाखा, उपशाखाओं की संख्या का लक्ष्य तय करने मात्र से काम नहीं चलेगा।

शाखा-दृढ़ीकरण : उपशाखा तक स्वयं-चिंतन की प्रक्रिया चले

शाखा के सर्वांगीण विकास में जितना महत्त्व कार्यविस्तार का होता है उतना ही कार्य के दृढ़ीकरण का भी होता है। दोनों परस्पर-पूरक हैं। शाखाओं के विस्तार के बिना नये-नये स्वयंसेवक-कार्यकर्ताओं को जोड़ना और कार्य को दृढ़ बनाना संभव नहीं है। वैसे ही जब तक एक-एक शाखा संस्कारक्षम बनकर शाखा में आने वाले स्वयंसेवकों का गुण विकास करते हुए नये-नये कार्यकर्ताओं की टोली खड़ी नहीं करेगी,

तब तक कार्यविस्तार भी संभव नहीं होगा। एक अभियान के तौर पर जोर लगाकर शाखाओं की संख्या बढ़ाने पर भी आगे चलकर उनको टिकाना आसान नहीं होगा। सर्वदूर इसी प्रकार का अनुभव आया है। यह भी ध्यान में रखना परम आवश्यक है कि शाखाओं के दृढ़ीकरण का काम उपशाखा स्तर से ही शुरु करना होगा। स्वयंसेवकों के लिए सब प्रकार के बुनियादी संस्कार मिलने का केन्द्रस्थान वही है।

शाखा की संस्कार-क्षमता का अत्यन्त प्रमुख लक्षण होता है – वहाँ के कार्यकर्ता-स्वयंसेवकों में अपनी शाखा के बारे में गहरी आत्मीयता और उनके अंदर शाखा को हर प्रकार से आगे बढ़ाने का उत्साह। इसके लिए अपनी-अपनी उपशाखा में कार्यकर्ता-स्वयंसेवकों को नये-नये कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। स्वयं सोचें, स्वयं योजना बनायें, और उसका निर्वहन करें – इस प्रकार के चिंतन की और कार्य-निर्वहन की प्रक्रिया में जब स्वयंसेवक भाग लेंगे तो उनके अंदर स्वाभाविक रूप से अपनी शाखा के बारे में अपनेपन की भावना जगेगी, योजना बनाने की और उसको कार्यान्वित करने की क्षमता बढ़ेगी और नये-नये कार्यकर्ताओं के निर्माण में सहायता होगी। इस प्रकार की चिंतन-प्रक्रिया अपने संगठन के प्रत्येक स्तर पर होनी आवश्यक है। केवल अखिल भारतीय या प्रांतीय स्तर पर चिंतन होने मात्र से निचले स्तर के कार्यकर्ताओं की केवल सूचना पालन की भूमिका बन जायेगी और कार्य का स्वरूप भी केवल यांत्रिक बन जायेगा। इसके पहले जो वृक्ष के एक-एक पते, मनुष्य की एक-एक जीवकोशिका का उदाहरण दिया है, उस प्रकार की बौद्धिक, मानसिक प्रवृत्ति स्वयंसेवकों की बने – इसके लिए चिंतन की प्रक्रिया सब स्तरों पर सक्रिय होना अनिवार्य है।

कार्यक्रमों की गुण-निर्माण क्षमता समझाई जाए

शाखा के दृढ़ीकरण के लिए सबसे प्राथमिक और बुनियादी बात है – एक घंटे तक संघस्थान पर चलने वाली संस्कारक्षम नित्य शाखा। संघस्थान की स्वच्छता, ध्वजमंडल की शोभा, स्वयंसेवकों के जूते-कपड़े आदि की व्यवस्था, खेलों के लिए रेखांकन, आदि सभी बातों का भी महत्त्व ध्यान में रखना होगा। शाखा शुरू होने के पहले स्वयंसेवकों को साथ

लेकर समय पर शाखा पहुँचना, घंटे-भर की पूर्व योजना के अनुसार शारीरिक-बौद्धिक कार्यक्रमों का उत्साहपूर्ण निर्वहन करना, संख्या कम या अधिक होने पर भी तद्नुसार कार्यक्रमों की रचना करना, विकिर के पश्चात् अनौपचारिक परिचय, उस दिन नहीं आये हुए स्वयंसेवकों का स्मरण, उनके घर/छात्रावास जाकर उनसे मिलना, ये सभी कार्य शाखा की कार्यकर्ता-टोली को अवश्यमेव करना होगा।

घंटे-भर की शाखा-पद्धति की एक-एक छोटी-छोटी बात में भी जब स्वयंसेवकों की आस्था बढ़ेगी तभी शाखा-पद्धति यशस्वी हो सकती है। इसके लिए इन सभी कार्यक्रम/पद्धतियों के द्वारा अपने अंदर किस-किस प्रकार के सद्गुणों का संस्कार मिलता है – इसका बोध स्वयंसेवकों में जागृत करना होगा। खेलों का विवरण देते समय एक-एक खेल की विशेषता क्या है ? इससे अपने अंदर कौन सा गुण निर्माण होता है ? यह भी समझाना चाहिये। कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास में जिस-जिस चीज का उपयोग होता है – उसे समझ लेने पर उसमें अपना मन लगाकर जरूर उसका प्रयोग करेगा।

कुछ साल पहले पंजाब के संघ शिक्षा वर्ग का एक अनुभव इस दृष्टि से काफी उद्बोधक रहा। कालेज के नये-नये छात्र भी शिक्षार्थी के नाते आये थे। उनका अनुशासन से कोई संबंध नहीं था ! संघस्थान पर हों, बैठक-बौद्धिकों में हों उनकी विचित्र-विचित्र लीलाएं चलती रहती थी। बौद्धिक के बीच में भी उनमें से कुछ को उठाकर बाहर करना पड़ता था। मैंने बैठक में उनके सामने एक प्रश्न रखा कि अपने इतिहास के कोई ऐसे प्रसंग बताओ जिसमें अनुशासन/आज्ञापालन के अभाव के कारण देश को आपार हानि हुई। अन्यान्य प्रसंगों के बीच एक शिक्षार्थी ने १८५७ का उल्लेख किया। उसी प्रसंग को मैंने आगे बढ़ाकर कहा कि "पूर्व योजना के अनुसार १८५७ की ३१ मई को सुबह पूरे देश-भर में एक-साथ फिरंगियों पर हमला करने का निश्चय हुआ था। परंतु इस का उल्लंघन करते हुए तीन सप्ताह पूर्व ही मेरठ, कानपुर, दिल्ली आदि अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समय पर क्रांति का उद्घोष कर दिया गया। इस से अंग्रेजों को उन सबको अलग-अलग से दबाने के लिए अवसर मिल गया। उन वीर सैनिकों में स्वातंत्र्य प्रेम था, पराक्रम था, उन्होंने बलिदान

भी किया परन्तु केवल अनुशासन हीनता के एक दुर्गुण के कारण से वह सारा व्यर्थ हो गया। यदि अनुशासन के साथ लड़ते तो अपना देश १९४७ से ६० साल पहले ही अखण्ड-रूप से स्वतंत्र हो सकता था।" बैठक के अंत में मैंने कहा, 'संघ में हम जो आज्ञापालन-सूचनापालन-समयपालन आदि बातों पर विशेष आग्रह करते हैं इसके पीछे यही कारण है कि उनके बिना हमारा किसी भी प्रकार का सद्‌गुण देश के काम में नहीं आयेगा।" बैठक समाप्त होने पर जब 'उत्तिष्ठ' की आज्ञा दी गई तो एक चमत्कार हुआ, ऐसा सबको लगा। पूर्ण शांति के साथ सब दक्ष में खड़े हो गये ! और बाद में संघस्थान पर भी शिक्षार्थियों के व्यवहार में काफी अंतर दिखाई दिया। यानि किसी बात का महत्त्व मन को जँचने पर उसका व्यवहार में भी धीरे-धीरे प्रगटीकरण होता है। इस बात को ध्यान में रखकर अपनी नित्य-शाखा की प्रत्येक छोटी-मोटी सूचना, व्यवस्था, कार्यक्रम आदि का संगठन की दृष्टि से किस प्रकार का महत्त्व है, यह बात शाखा के स्वयंसेवकों को समझाना आवश्यक है।

स्वयंसेवकों के परिवार संघनिष्ठ बने

शाखा के सभी स्वयंसेवकों के परिवारों से नियमित-रूप से घनिष्ठ सम्पर्क बनाकर रखना – शाखा दृढ़ीकरण का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। शाखा में आये हुए पुराने-नंये प्रौढ़-तरुण-बाल-शिशु सभी स्वयंसेवकों की सूची बनाकर उनके परिवारों से सप्ताह में कम से कम एक बार मिलकर आना चाहिए। शाखा के कार्यवाह, मुख्यशिक्षक, गटनायक आदि सभी कार्यकर्ताओं को अपने-अपने दायित्व के अनुसार स्वयंसेवकों की सूची बाँटकर यह काम पूरा करना पड़ेगा। शाखा-कार्यपद्धति की यह एक अपूर्व विशेषता है। शाखा में एक छोटा शिशु स्वयंसेवक भी यदि आता है उसका भी परिवार धीरे-धीरे संघनिष्ठ परिवार बनना चाहिये। इस प्रकार स्वयंसेवक-परिवारों को संघानुकूल तथा समाजानुकूल बनाने से अपने समाज को समग्र-रूप से संगठित करने में उसका बहुमूल्य योगदान रहेगा क्योंकि अपने हिन्दू समाज का मूलभूत घटक व्यक्ति नहीं, परिवार ही रहा है। बच्चों के सब प्रकार के बुनियादी संस्कार, चरित्र-वर्धन आदि बातों का बीजारोपण परिवार में ही होता है।

सेवा की सच्ची प्रेरणा वंचितों की दुर्दशा देखकर उत्पन्न होने वाली पीड़ा है

हम जानते हैं कि पिछले कुछ वर्षों से शाखा-कार्य का एक अभिन्न अंग – इस नाते सेवाकार्य को भी जोड़ने का प्रयास चला है। भले ही यह अपेक्षित नहीं है कि शाखा के सभी कार्यकर्ता/स्वयंसेवक सेवाकार्य में लग जायें, परन्तु इतना तो आवश्यक है कि सभी स्वयंसेवकों को आम समाज के सुख-दुःख में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो और उनके अंदर भी सामाजिक परिवर्तन की चेतना जगे। इसलिये प्रत्येक उपशाखा के साथ एक सेवा बस्ती को जोड़ना चाहिए और वहीं पर सप्ताह में एक दिन शाखा लगाना उपयुक्त रहेगा। इस प्रकार का प्रयोग जहाँ-जहाँ पर हुआ है, स्वयंसेवकों को बहुत ही आनन्ददायक तथा प्रेरणादायक अनुभव प्राप्त हुए हैं और संबंधित सेवा बस्ती पर भी बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। सेवाकार्य के संदर्भ में एक और बात ध्यान में रखनी है। अनेक स्थानों पर किसी पुरुष/महिला को मानधन देकर सेवा प्रकल्प चलाये जा रहे हैं। परन्तु उनके साथ शाखा के दो-चार स्वयंसेवक जब तक नहीं जुड़ेंगे और उस बस्ती के जीवन में अपेक्षित परिवर्तन लाने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक सेवाकार्य चलाने का हमारा मूल उद्देश्य सफल नहीं हो सकता।

यह भी अपने को बार-बार अनुभव में आता है कि केवल योजना बनाने मात्र से, कार्यकर्ताओं की नियुक्ति करने मात्र से, सेवा कार्य सफल नहीं होता है। सेवा, कार्यकर्ताओं के मन में अपने वंचित बंधु-भगिनियों की दुर्दशा देखकर जब पीड़ा पैदा होगी तभी सचमुच ठोस काम हो सकता है और सेवितों के जीवन में भी आवश्यक परिवर्तन दिखाई देगा।

तमिलनाडु के त्रिची के अपने सह जिला संघचालक श्री वैंकटरंगनजी का उदाहरण बहुत ही प्रेरक है। वह रामकृष्ण तपोवन के एक स्थानीय विद्यालय में अध्यापक हैं। राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त किये हुए श्रेष्ठ विद्वान हैं। एक बार वे किसी कार्यक्रम के निमित्त त्रिची से दूर समुद्रतट पर बसे हुए एक ग्राम में गये हुए थे। कार्यक्रम के पश्चात् उधर के अपने हिन्दुओं की दशा के प्रत्यक्ष दर्शन करने की दृष्टि से किसी की मोटरसाइकिल पर आस-पास के २०-२५ गाँवों में घूमकर आये। वहाँ के हिन्दुओं की धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक ऐसी सभी दृष्टि से बनी हुई दुर्दशा तथा हिन्दुओं की स्थिति के बिल्कुल विपरीत मुसलमानों की ऊँची मस्जिदें तथा ईसाईयों के

भव्य-गिरजाघर, ऐशोआराम से रहनेवाले उनके मुखियाओं के निवास और उनके द्वारा हिन्दु लोगों का, महिलाओं का शोषण, मतान्तरण – यह सभी बातें देखकर उनका दिल दहल उठा। वहीं पर उन्होंने संकल्प किया कि "यहाँ पर मैं विद्यालय खड़ा करके यहाँ के बच्चों के लिये अच्छे शिक्षण, संस्कारों का केन्द्र स्थापित करूँगा।" वापिस आने पर अपनी शिक्षण संस्था के मुखियाओं को जब अपना निर्णय बताया तो वे पूछने लगे कि "ऐसी जगह जहाँ आपको किंचित-मात्र भी सहायता की आशा नहीं है किस के भरोसे आप कार्य शुरु करेंगे ? कौन आपके साथ है ?" श्रीवैंकटरंगन जी ने उत्तर दिया, 'भगवान रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद मेरे साथ है।' श्रीवैंकटरंगन जी अपने अच्छे सुखी पारिवारिक जीवन को त्यागकर वहाँ अकेले जाकर बसे, गाँव-गाँव घूमते रहे, माता-पिताओं को समझाते रहे। और बच्चों को ले जाकर पढ़ाना शुरु किया। मधुमेह से पीड़ित होने पर भी स्वयं पकाना, कपड़े धोना आदि ऐसा दिनक्रम चलता रहा। अब १४-१५ साल पश्चात् वहाँ पर लगभग ६०० विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क भव्य-विद्यालय और ६०० के लिये निःशुल्क छात्रावास चल रहे हैं। आसपास के २०-२५ गाँवों के हिन्दू बच्चों के लिये एक प्रभावी शिक्षा और संस्कार-केन्द्र के रूप में वह खड़ा हुआ है। और सबसे बड़ी बात याने, अपने परिवार के साथ रहने पर जितने संतुष्ट और आनंदित रहे होंगे उससे कई गुना अधिक आनंद और उल्लास के साथ उस शिक्षा धाम के कार्य में श्रीवैंकटरंगन जी लगे हैं।

अपने समाज के दुखी बन्धुओं की दुर्दशा को प्रत्यक्ष देखने पर जो हृदय में पीड़ा होती है उसी का यह चमत्कार है। अब तक विश्व-भर में जहाँ-जहाँ पर लोगों के सच्चे सुधार हेतु प्रसास हुए हैं ऐसे सभी सफल प्रयासों के पीछे यही पीड़ा, यही चेतना रही है। स्वयंसेवकों को सेवाबस्तियों में, वनवासी अंचलों में, बीच-बीच में ले जाने के पीछे का उद्देश्य यही है।

प्रवासी कार्यकर्ताओं की प्रमुख भूमिका

अपने समूचे संगठन को ठीक दिशा में और ठीक गति से ले जाने का हमारा जो संकल्प है उस को पूरा करने का प्रमुख दायित्व प्रवासी कार्यकर्ताओं पर ही है। अपने शरीर की धमनियों और शिराओं के समान ही संगठन में प्रवासी कार्यकर्ताओं की भूमिका है। पूरे शरीर की एक-एक

जीवकोशिका से भी दूषित अंशों को निकाल कर वहाँ पर शुद्ध पौष्टिक अंशों को पहुँचाने वाली धमनी व शिरा समान ही अन्यान्य स्तरों के प्रवासी कार्यकर्ताओं की भूमिका होती है। वे अपने कार्यक्षेत्र की प्रत्येक शाखा की सब प्रकार की कमियों और कमजोरियों को दूर करते हैं और वहाँ के कार्यकर्ताओं को नयी प्रेरणा, नया उत्साह और मार्गदर्शन प्रदान करते रहते हैं।

प्रवासी कार्यकर्ताओं से प्रमुख रूप से अपेक्षित कार्य

कम से कम सप्ताह में पूरा एक दिन अपने स्थान से बाहर अन्य किसी शाखा स्थान पर प्रवास के लिये जाना ; रात्रि में वहीं पर ठहरना, वहाँ की उपशाखा के मुख्यशिक्षक, शिक्षक, गटनायक आदि कार्यकर्ताओं को साथ लेकर स्वयं के उदाहरण से शाखा के सभी पहलुओं के बारे में व्यवहारिक रूप से अभ्यस्त कराना ; वहाँ के कुछ प्रमुख कार्यकर्ताओं से व्यक्तिगत/अनौपचारिक ढंग से अच्छे संबंध बनाकर उनकी वैयक्तिक अथवा संगठनात्मक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करना ; कुछ प्रमुख स्वयंसेवक तथा शुभचिंतकों के परिवारों से जाकर मिलना ; शाखा-कार्य में जो-जो कमियाँ होगी उनको दूर करने की दृष्टि से स्थानीय कार्यकर्ताओं को साथ लेकर स्वयं आगे होकर कार्य करना – जैसे, आवश्यकतानुसार रात्रि, सायं अथवा प्रभात शाखा प्रारम्भ करना, सेवा कार्य प्रारम्भ करना, सेवा बस्तियों में शाखा लगवाना, चुने हुए कार्यकर्ताओं को रात्रि में एक स्थान पर ठहरा कर प्रार्थना, गीत, कथा आदि सिखाना, दूसरे दिन सुबह कार्यकर्ताओं को आवश्यकतानुसार शारीरिक प्रशिक्षण देना, आदि कार्यों से दिनभर का अपना कार्य अधिकाधिक सार्थक करना आवश्यक है। उपशाखा स्तर पर भी स्वयं सोचकर कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिये तत्रस्थ कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित करना चाहिये। प्रवास पर जाने की पूर्व-सूचना पर्याप्त समय पहले तत्रस्थ कार्यकर्ताओं को देना आवश्यक है। साथ ही, उनको उपरोक्त कुछ कार्यों की पूर्व तैयारी करने के लिये सूचित करना भी उपयुक्त रहेगा।

सप्ताह में एक दिन के अलावा भी आसपास की समीपस्थ शाखाओं पर २-३ घंटे के लिये ही क्यों न हो जाना भी उपयुक्त रहेगा। इस प्रकार संघ-कार्य के लिये प्रवास करना अपनी दिनचर्या का स्वाभाविक

अंग बने और प्रवास अधिकाधिक परिणामकारी बने – यह कार्य के विस्तार तथा दृढ़ता के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

कार्यकर्ताओं की समग्र जीवन-रचना

स्पष्ट है कि कार्य को सभी दृष्टि से आगे बढ़ाने के लिये उसके अनुरूप कार्यकर्ताओं को स्वयं अपने जीवन की रचना करनी पड़ेगी। स्वयंसेवकत्व की अवधारणा स्पष्ट करते समय 'हम २४ घंटे के स्वयंसेवक हैं' और 'हम आजीवन स्वयंसेवक हैं' ऐसा कहते हैं। यह सूत्र अपने दैनंदिन जीवन में कैसे प्रकट हो ? यह सोचते समय प्रमुख रूप से उस के चार पहलू ध्यान में आते हैं। अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यवसायिक और सामाजिक – ऐसे ये चार पहलू हैं।

पहला पहलू है - व्यक्तिगत

अपने अन्य तीनों प्रकार के दायित्वों को यथोचित प्रकार से संभालते हुए संघ-कार्य के लिये अधिकाधिक समय निकालने लायक अपनी दिनचर्या बनानी चाहिये। साथ ही संघ-कार्य की दृष्टि से अपनी शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक क्षमता भी बढ़ती रहे, इस हेतु सतत् प्रयत्नशील रहना होगा। अपने स्वभावगत क्रोध, आलस्य, गलत आदतों आदि के बारे में आत्म-विश्लेषण करते हुए उन्हें दूर करने से ही अपने हाथों अधिक प्रभावी ढंग से संघ-कार्य हो सकता है। नियमित रूप से व्यायाम, अच्छे उद्‌बोधक ग्रंथों का वाचन भी आवश्यक है। हमेशा यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि कार्यकर्ता तथा उसका कार्यक्षेत्र – दोनों आदमी और उसके प्रतिबिम्ब जैसे ही हैं। अपने कार्यक्षेत्र को सुधारना हो, कार्य को आगे बढ़ाना हो, तो प्रथमतः अपने को ही इस दृष्टि से सुधारना होगा, आगे बढ़ाना होगा।

दूसरा पहलू : पारिवारिक

इसके पहले भी बता दिया है कि हिन्दू जीवन रचना में परिवार ही आधारभूत घटक है और सामाजिक परिवर्तन में उसकी प्रभावी भूमिका होना अत्यंत आवश्यक है। श्री के. एम. पणिक्कर ने अपनी 'The Survey of Indian History' में यह बात लिखी है कि "भारत के राष्ट्र जीवन का मूल-स्रोत हिन्दुत्व ही है। अपने सामाजिक जीवन में हिन्दू परिवारों में

मिलते रहे सोलह संस्कारों के कारण ही आज तक हिन्दू समाज में हिन्दूपन की छाप सुरक्षित रही है।" यह तो निर्विवाद है कि आज भले ही सोलह संस्कार बचे हुए नहीं होंगे, फिर भी जो कुछ प्रमुख संस्कार अभी भी शेष हैं उन्हीं के कारण ही अपने यहाँ 'हिन्दूपन' जीवित रहा है। यह भी हमारे ध्यान में जरूर रहना चाहिये कि अभी जो प्रमुख हिन्दू संस्कार बचे हैं उनको जीवित रखने में घर की माता-बहिनों की ही प्रमुख भूमिका रही है। अपने को समस्त हिन्दू समाज को यदि, स्त्री-पुरुष आदि सबको मिलाकर, अच्छा सुसंस्कारित और सुसंगठित करना है तो माता-बहिनों की सक्रिय भागीदारी के बिना यह कदापि संभव नहीं है।

आपात-काल में निर्णायक भूमिका

आपातकालीन अनुभव तो इस दृष्टि से बहुत ही उद्‌बोधक और प्रेरक रहा है। श्रीमती इन्दिरा जी की तानाशाही को समाप्त करने में संघ के स्वयंसेवकों द्वारा चलाये गये भूमिगत आंदोलन की ही सर्वाधिक भूमिका रही है। यह सब लोग मानते हैं। परन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि भूमिगत आन्दोलन को यशस्वी बनाने में स्वयंसेवकों के परिवारों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। एक बार इन्दिराजी ने देशभर के प्रमुख पुलिस अधिकारियों की एक बैठक में कड़ी आवाज से पूछा कि 'संघ में हजारों प्रचारकों व अन्य कार्यकर्ताओं के द्वारा मेरे खिलाफ लगातार भूमिगत तौर पर प्रचार अभियान चल रहा है। आपने अभी तक उन्हें क्यों नहीं पकड़ा है ?' उत्तर के रूप में पुलिस अधिकारियों ने कहा "मैडम, हम क्या करें ? ये लोग यदि अन्य राजनैतिक नेताओं की तरह होटल आदि सार्वजनिक आवासों पर ठहरते तो जरूर उनको पकड़ लेते। परन्तु संघ के ये लोग किसी के घर में मामा, किसी के घर में चाचा या भाई ऐसे बनकर परिवार में घुलमिलकर रहते हैं। कभी बड़े बंगले में, कभी झौंपड़ी में ठहरते है। हम कहाँ-कहाँ पर पता लगायें समझ में नहीं आ रहा।" यह तो स्पष्ट है कि संघ तथा विविध क्षेत्र के कार्यकर्ताओं को संरक्षण और आश्रय देने का आधार परिवार की महिलायें ही थीं। जिस भीषण परिस्थिति में बड़े-बड़े नेता, पत्रकार, व्यवसायी, अधिकारी लोग भी डर के मारे चुप बैठ गये थे ऐसे समय पर सर्वसामान्य स्वयंसेवकों के परिवारों की माता-बहिनों ने निर्भय और देशभक्तिपूर्ण भूमिका निभाई।

इसके पीछे यही कारण रहा है कि इन परिवारों से संघ का काफी घनिष्ठ संबंध बना हुआ था।

परिवार समाज-निष्ठ बनें

इसलिये अपने परिवार किस प्रकार अधिकाधिक संघानुकूल तथा समाजानुकूल बनाये जायें इस दिशा में अपने को सतत् प्रयत्नशील रहना होगा। अपने परिवार का प्रत्येक सदस्य समाज के लिये पोषक किसी न किसी काम में कुछ न कुछ मात्रा में लगा रहे, यही हमारी दृष्टि होनी चाहिए। साथ ही, अपने परिवार को आज चल पड़े जातिवाद, छुआछुत, दहेज, धन के आडंबर, पश्चिमी अन्धानुकरण, अंग्रेजी के मोह, दूरदर्शन के अवांछित प्रभाव, अपने समाज और अपनी संस्कृति के लिये ऐसी घातक बातों से बचना होगा। अपना घर एक आदर्श हिन्दू-गृह बने इस दृष्टि से अपने घर की बाहरी सजावट से लेकर परिवार की दिनचर्या तक कुछ अच्छी पद्धतियों, रीति-नीतियों को अपनाना चाहिये। सभी घरों में छोटा सा क्यों न हो उपयुक्त धार्मिक-ग्रंथों का संग्रह हो। एक पूजा-गृह भी होना अनिवार्य है। इन सभी आवश्यक हिन्दू संस्कारों की नित्य उपासना की आदत परिवार के सभी प्रियजनों में सुदृढ़ बननी चाहिये।

धर्म का सही बोध जागृत किया जाए

धर्म पर अटल श्रद्धा रखनेवाला अपना समाज है। परंतु पिछली कुछ सदियों से धर्म को अत्यंत संकुचित और कभी-कभी उसके विकृत रूप को ही धर्म मानकर चलने की परिपाटी बनी हुई थी। जैसे छुआ-छूत को भी धर्म माना गया था। परंतु अब अपने श्रेष्ठ धर्माचार्य-शंकराचार्यों ने ही घोषित किया है कि इस प्रकार समाज को तोड़नेवाली कोई भी रुढ़ि-रिवाज धर्म नहीं है – वह अधर्म है। उन्होंने सभी हिन्दुओं के लिये यह मंत्र भी दिया है कि 'हिन्दवः सोदराः सर्वे' – सारे हिन्दू भाई-भाई हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप यही है। जो-जो व्यवहार समाज को जोड़ता है वही धर्म है, पुण्य है। और जो-जो बातें समाज को तोड़ती हैं वह सब अधर्म हैं, पाप हैं। इसीलिये अपने परिवार कभी भी समाज को तोड़नेवाली छुआ-छूत, जातिभेद आदि अधार्मिक रुढ़ियों के शिकार न बनें, हमेशा समरसता बढ़ानेवाले पुण्य कार्य में भाग लेने के लिये अग्रसर होते रहें, इस दृष्टि से प्रयत्न करना होगा। परंतु यह स्पष्ट है कि कई पीढ़ियों से चलती

आई हुई रुढ़ियों को केवल बताने मात्र से दूर करना संभव नहीं है। उसके लिए पूरे परिवार के मानस को अनुकूल बनाना होगा। इस दृष्टि से एक छोटा सा सुझाव है – परिवार के सभी छोटे-बड़े, स्त्री और पुरुष, सप्ताह में एक दिन किसी निश्चित समय पर अनौपचारिक रूप से एकत्र बैठें और पिछले सप्ताह में अपने देश और समाज के संबंध में, महत्त्वपूर्ण समाचारों की एवं संघ तथा विविध कार्यों की नई गतिविधियों की चर्चा करें। अपनी भाषा में निकलनेवाले साप्ताहिकों में प्रकाशित हुए विशेष समाचारों का भी उल्लेख हो। इस मिलन में परिवार के सभी सदस्यों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें। धीरे-धीरे सामाजिक समरसता की दृष्टि से किसी कार्यक्रम या धार्मिक उत्सव के अवसर पर सेवा बस्ती में जाने का प्रस्ताव भी रखें। यह ध्यान में रखें कि परिवार के स्तर पर समरसता के आचरण करने से ही संबंधित सभी वर्गों में सच्चा हृदय परिवर्तन हो सकता है।

तीसरा पहलू : शैक्षणिक/व्यवसायिक

जो विद्यार्थी कार्यकर्ता हैं वे उत्तम दर्जे के विद्यार्थी बनने के लिए पूरे प्रयास के साथ-साथ संघकार्य हेतु पर्याप्त समय देने वाले अच्छे कार्यकर्ता भी बनें। अपने विद्यालय-महाविद्यालय क्षेत्र में भी स्नेहशीलता और कार्यकुशलता से अधिकाधिक विद्यार्थियों व अध्यापकों को संघ के साथ जोड़ने का प्रयास करना आवश्यक है। और अपनी यौवनावस्था के असामान्य महत्त्व को समझकर एक तपश्चर्या की भावना से अपने शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास के कार्य में जुटे रहना चाहिये। अपने जीवन में सबसे मूल्यवान वस्तु समय है उसको किंचित-मात्र भी व्यर्थ न किया जाये, इसके लिये विशेष सावधानी रखनी होगी।

अच्छे निष्ठावान विद्यार्थी-कार्यकर्ता से यह भी अपेक्षा है कि अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी होने के पश्चात् कम से कम ३ वर्ष संघ-कार्य के लिये पूर्ण समय देने का निश्चय करें, तदनुरूप अपनी सिद्धता भी करें। यदि उसके आगे भी प्रचारक बनकर रहने में उसको आनन्द मिलता है तो खुशी से आगे भी बढ़े। परन्तु कोई आग्रह नहीं। अपने भरे यौवन में ३ साल राष्ट्रदेव के श्रीचरणों में समर्पित किये, यह कोई छोटी बात नहीं। जीवन भर अभिमान करने की बात है। साथ ही, प्रचारक-जीवन में प्राप्त कई प्रकार के लोक-संग्रह के संस्कार भी जीवनभर उसका साथ देते रहेंगे।

अपने व्यवसाय को सामाजिक कर्तव्य के नाते ईमानदारी से पूरा मन लगाकर करते हुए अपने व्यवसायी बंधुओं को अन्य व्यवसायियों के सामने एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। धीरे-धीरे उनको भी संघ के सम्पर्क में लाने का प्रयास भी करना होगा। पारिवारिक जिम्मेदारी, बच्चों की पढ़ाई, माता-पत्नी आदि की मानसिक प्रसन्नता आदि बातों पर भी उनको विशेष ध्यान देना अनिवार्य है।

गृहस्थ होने पर भी अपने जीवन की रचना के बारे में यही दृष्टि रखना ठीक रहेगा कि शीघ्रातिशीघ्र पारिवारिक-आर्थिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर पूर्णकालीन वानप्रस्थी कार्यकर्ता के नाते कार्य करने की अपनी और परिवार की मानसिक तैयारी करना और आर्थिक व्यवस्था आदि पहले से करके रखना आवश्यक है। अपनी हिन्दुत्वनिष्ठ जीवन रचना की यही विशेषता रही है। आयुष्य भर 'अर्थ' और 'काम' में ही रमे न रहते हुए यथाशीघ्र उनसे पूर्ण-रूप से मुक्त होकर उर्वरित जीवन को समाजरूपी ईश्वर की सेवा में लगाने से ही मानवजीवन की यात्रा सार्थक हो सकती है। इस प्रकार प्रतिवर्ष अच्छे निष्ठावान सुशिक्षित तरुण एवं अनुभवी वानप्रस्थी पूर्णकालीन कार्यकर्ताओं के अच्छी संख्या में निकलने से संघ के और अन्य सभी प्रकार के कार्यों के लिये भी कार्यकर्ताओं की बढ़ती हुई माँग को पूरा करना संभव होगा। शिक्षण के पश्चात् शिक्षक, वैद्यकीय आदि वृत्ति अपनाने वाले युवकों को यह भी दृष्टि रखनी होगी कि संघ की योजनानुसार अपने देश में जहाँ पर ऐसे कार्यकर्ताओं की नितान्त आवश्यकता हैं वहीं पर जाकर अपनी वृत्ति चलायें।

चौथा पहलू – सामाजिक

अपने आसपास के सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी कार्यों को यथाशक्ति सहयोग करने और हानिकारक कार्यों को दूर करने के कार्य में अग्रेसर होकर समाज को मार्गदर्शन करने की सामाजिक प्रवृत्ति स्वयंसेवकों की बननी चाहिए।

यह सब कैसे करें

इन सभी बातों को जीवन में कैसे उतारें ? ऐसा भी कभी-कभी मन में प्रश्न उठता है। परन्तु यह भी अपने नित्य का अनुभव है, जो विषय हमें अपने लिये महत्त्वपूर्ण लगता है उसके लिये हम समय जरूर निकालते

हैं, उसके लिये अपनी तैयारी भी करते हैं। उदाहरण के लिये, कोई विद्यार्थी अपनी परीक्षा की तैयारी में लगा है। उसका कोई परममित्र भी आकर मन बहलाने वाले कार्यक्रम के लिए अपने साथ चलने के लिए आग्रह करता है तो भी वह नहीं जायेगा और कहेगा कि 'मेरे पास समय नहीं' ! याने अपना सारा समय परीक्षा की तैयारी में लगाना है, क्योंकि अपने भविष्य को अच्छा बनाने के लिये वह अनिवार्य है – यह बात वह अच्छी प्रकार से जानता है। अपने देश में अल्पायु में ही प्रचण्ड कार्य सम्पन्न करने वाले शंकराचार्य, विवेकानन्द, संत ज्ञानेश्वर, छत्रपति शिवाजी, डा. हेडगेवार जैसे महापुरुषों के पास भी दिन में उतना ही समय था जितना एक भिखारी के पास है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि उन महापुरुषों ने अपने जीवन के सामने एक महान लक्ष्य रखकर उस की सिद्धि के लिये पूरे अपने शरीर, मन व बुद्धि को लगा दिया था।

परम पूजनीय डा. हेडगेवार जी का जीवन इस दृष्टि से हम सभी के लिये अत्यंत प्रेरणादायक है। बचपन से ही एक ध्येय से प्रेरित होकर तदनुरूप विद्यालयीन शिक्षा, कलकत्ता में वैद्यकीय अध्ययन, परिवार की गरीबी के बावजूद वैद्यकीय व्यवसाय अथवा गृहस्थ जीवन स्वीकार न करते हुए अपनी पूरी शक्ति संघ-कार्य में लगाना – ये सभी इसी बात का संकेत है कि जो व्यक्ति किंसी बात का महत्त्व समझता है और तीव्र-रूप से अनुभव करता है उसी के अनुकूल अपने पूरे जीवन की रचना और तैयारी कर लेता है। अपने सभी कार्यकर्ता बंधु इस बात को नित्य ध्यान में रखें और यह दृष्टि अपने जीवन में निरन्तर जागृत रखें। इसके लिये स्वयं की ओर से भी नित्य आत्मचिंतन करते रहना चाहिए। रात्रि में सोने के पूर्व दिनभर की दिनचर्या का सिंहावलोकन करके उसमें रही कमियों को दूसरे दिन दूर करने का संकल्प करना चाहिये। और दूसरे दिन उठने के पश्चात् किसी उपयुक्त समय पर उस दिन के अपने कर्तव्यों को एक बार स्मरण कर दिनचर्या को शुरू करने से धीरे-धीरे हमारी इच्छा के अनुसार अपने जीवन में अवश्यमेव परिवर्तन आते जायेंगे।

-: इति श्री :-

प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन, देशबन्धु गुप्त मार्ग, झण्डेवाला, नयी दिल्ली–११००५५

मूल्य : रु. 5.00 रुपये